दिव्य प्रकाश-पुंज :
स्वामी शिवानन्द जी

दिव्य प्रकाश-पुंज : स्वामी शिवानन्द जी

श्री स्वामी चिदानन्द

अनुवादक

श्री स्वामी अर्पणानन्द सरस्वती

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

पत्रालय : शिवानन्दनगर-२४९१९२

जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत

www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org

प्रथम संस्करण : २०१४

(२,००० प्रतियाँ)

द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

Swami Chidananda Birth Centenary Series—9

निःशुल्क वितरणार्थ

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगरह्वह्व२४९१९२,
जिला टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड' में मुद्रित।
For online orders and Catalogue visit : dlsbooks.org

दिव्य प्रकाश–पुंज : स्वामी शिवानन्द जी

भारत-ज्योति*

युगों से काल उन महान् आत्माओं का एक मनोहर विश्व–कोष संरक्षित करता आया है, जो अपने चरण–चिह्न सुन्दरता से यथाक्रम उसके हृदय पर अंकित करते गये। अनन्त काल पूर्व से ही घटित घटनाओं के प्रामाणिक विवरण को सुरक्षित रखने का श्रीगणेश हो गया था, जिसका पता इतिहास और विज्ञान भी न लगा सके।

समय की सतत यह आकांक्षा रही कि वह दिव्य लोक से निःसृत मोती के बिन्दुओं का संग्रह और अपनी मनोरम कल्पना–शक्ति से उनको चित्र–रूप में चित्रित करता रहे। विश्व की चित्रशाला इन विलक्षण चित्रों से सुशोभित है। इनकी शोभा, इनकी ज्योति कभी धूमिल नहीं होती। अन्तःहृदय की यह ज्योति बुद्धि, ज्ञान, परिज्ञान और आत्म–निरीक्षण से ज्योतित है। यह मस्तिष्क और हृदय की सन्तुलित स्थिति है। उसका हृदय में पूर्णरूपेण जीवन्त रूप से दर्शन करें। सूर्यास्त हो जाने से सूर्य का अन्त नहीं हो जाता।

हमारी मातृभूमि में अवतरित होने वाले प्रभु–प्रेषित सन्देशवाहकों को शान्ति एवं धैर्य पूर्वक, समय ने आश्चर्य सहित चित्रित किया। सच्चाई की आशापूर्णता, वातावरण के मधुर प्रभा–मण्डल तथा धरातल की उर्वरता को उसने अनुभव किया।

---

*इस पुस्तिका की विषय–सामग्री **आलोक–पुंज** से संकलित की गयी है, जिसकी रचना १९४३–१९४४ मे की गयी थी, जब प.पू. श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज सशरीर विराजमान थे। इसी कारण पुस्तिका में वर्तमान काल की क्रियाओं का प्रयोग है।

भारत दूर तक फैला विशाल वट-वृक्ष है। योग-दर्शन रूपी सुविस्तीर्ण शाखाओं तथा आगन्तुक मूलों वाले इस वृक्ष की जड़ें धर्म में गहराई तक प्रवेश कर गयी हैं। जीवन-लक्ष्य, जीवनोद्देश्य तथा जीवनादर्श का उपदेश संसार में प्रचारित करने के लिए भारत माता एक के पश्चात् दूसरा तत्त्ववेत्ता अवतीर्ण करने में थकती नहीं। आज उसने हमारे समक्ष जिसको प्रस्तुत किया है; **वे हैं दिव्य प्रकाश-पुंज श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज।**

मानव नहीं चाहता कि उसकी सन्तति क्षीण ज्योति विकीर्ण करने वाली तारिका हो। जब सामान्य लोगों की यह बात है तो उनके विषय में क्या कहना है जो स्वयं प्रोज्ज्वल ज्योति हों! ऐसे ही एक परिवार ने गर्भ में ही परिपक्व अग्नि-पुंज को प्रज्वलित किया। ८ सितम्बर १८८७ को सुदूर दक्षिण भारत के पट्टमडाई ग्राम में एक शिशु ने जन्म लिया, जिसका नाम माता-पिता ने कुप्पुस्वामि रखा । निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि प्रभु ने उस शिशु को आत्मज्ञान से सम्पन्न कर दिया था। इस स्थान पर इनके महान् पूर्वज अप्पय दीक्षितार की अमिट छाप लगी है, जो सदैव स्मरणीय रहेगी।

ज्ञान और बुद्धिमत्ता से प्रदीप्त तथा पूर्ण उल्लास, शक्ति, उत्साह और अन्तःप्रेरणा से युक्त कुप्पुस्वामि अपने सभी खिलाड़ी साथियों और सहपाठियों को पराजित कर देते थे। उनका शरीर विलक्षण रूप से सम्पुष्ट एवं सुडौल था। विद्यालय तथा महाविद्यालय में वे अनेक पुरस्कारों के विजेता थे।

सम्भवतः उन्होंने यह विचार किया कि मनोविज्ञान के ज्ञान से भी पूर्व आरोग्य-विज्ञान का ज्ञान होना परमावश्यक है। तभी सन् १९१० में उन्होंने चिकित्सक का व्यवसाय अपनाया तथा सिंगापुर प्रस्थान किया। तरुण डाक्टर के रूप में भी वे अपने अवकाश के क्षणों को व्यर्थ गँवाने की अपेक्षा अध्ययन, निरीक्षण में ही पूरी तरह व्यतीत करते। अपना सारा चिन्तन वे

और विषयों से हटा कर इसी रोचक विषय पर केन्द्रित कर लेते। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि प्रथम वर्ष में ही वे चिकित्सा के पूरे पाठ्यक्रम से परिचित हो गये थे। उनकी अटूट एकाग्रता एवं सहजता का रहस्य उनके आज के दैनिक जीवन में भी देखा जा सकता है। चिकित्सकों ने समीकरण की कला को सीखा और देह की असन्तुलित अवस्था को सन्तुलित बनाने में इसका विवेकपूर्ण प्रयोग किया।

स्वामी जी ने इस कला को चिकित्सा-क्षेत्र में नहीं बल्कि आध्यात्मिक क्षेत्र में भी अपनाया। स्वामी जी ने न केवल सहस्रों रोगियों को व्याधियों से मुक्त किया अपितु उन आत्माओं को, जो वर्तमान यातनाओं तथा कष्टों से संघर्षरत व पीड़ित और मुक्ति के लिए प्रयत्नशील थींह्वह्वउनको भी मुक्त किया। उनका हृदय त्याग से दीप्त हो उठा था। उनका निवास-स्थान उनके लिए अग्नि की भट्ठी तुल्य भड़क उठा। आध्यात्मिक ज्वालाओं ने उनकी चल और अचल सम्पत्ति को निगल लिया। पदवी, सम्पत्ति, मित्रों तथा साथियों का उन्होंने परित्याग कर दिया। उनके अन्तर में आध्यात्मिक आवेग ने प्रहार किया और उनके हाथ में जलती ज्वाला थमा दी।

दृढ़ निश्चय और संकल्प से इस मशाल को ले कर विचार और आचार की बुराइयोंह्वह्वजिनसे मानवता आक्रान्त हैह्वह्वका उन्मूलन अपने शब्द और नाद से करने के लिए अपूर्व बुद्धि और नवीन उल्लास से परिपूर्ण व्यक्ति अब भारत में १९२३ में लौटे। यहाँ एक ज्योतिर्मय महात्मा परमहंस स्वामी विश्वानन्द सरस्वती के पवित्र हाथों से गंगा के किनारे १ जून १९२४ को संन्यास आश्रम में दीक्षित हुए। तब से वे 'शिवानन्द सरस्वती' के नाम से समलंकृत हुए।

संसार-रूपी पिंजरे से मुक्त हो कर उन्होंने एक स्थान से दूसरे स्थान की पद-यात्रा की, वहाँ के निवासियों को अमूल्य शिक्षाएँ प्रदान कीं, तैयार जिज्ञासुओं की भावनाओं को उद्दीप्त किया तथा जो उद्दीप्त थे, उनकी

भावनाओं को पूर्णतया प्रज्वलित किया। परिव्राजक-जीवन की सन्तुष्टि के उपरान्त उन्होंने हिमालय की तलहटी में पहुँच कर एकान्त-वास किया। घोर तपस्या, संन्यासियों तथा यात्रियों की निष्काम सेवा, स्वाध्याय में अदम्य रुचि, उच्च गम्भीरता, कार्यों में नियमितता, समग्र मानव-जाति का आलिंगन करने वाली महती भावना एवं सहानुभूतिमय दृष्टिकोण से सम्पन्न हो कर तथा जाति-भेद-भाव से ऊपर उठ कर वे पूर्ण योगी बन गये।

विशिष्ट गुण-सम्पन्न

स्वामी जी के हृदय में आनन्ददायी गम्भीर शान्ति का साम्राज्य है, जिसकी मधुर सुरभि तथा आध्यात्मिक स्पन्दन वे विश्व-भर में भेजते रहते हैं, जिनका रसास्वादन संसार के किसी भी कोने में वास करने वाला प्रत्येक व्यक्ति करता है। वे ज्ञान की विभिन्न पद्धतियों से पूर्णतया परिचित हैं। वे विलक्षण स्मरण-शक्ति से सम्पन्न हैं। उनका प्रवचन सबको मन्त्र-मुग्ध कर देता है। वे कर्तव्य-सम्पादन में निपुण हैं। उनकी सब पर समदृष्टि है और अपने मधुर स्वभाव से सबके साथ सम-व्यवहार करते हैं। वे अतिशय सरल हैं। वे सहज प्राप्य हैं, सबको आत्म-सम मानते हैं।

आश्रमवासियों व अभ्यागतों के साथ आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करते हुए वे एक महान् एवं शान्तमूर्ति के रूप में अभिव्यक्त हो उठते हैं। वे सरल एवं महान् व्यक्ति हैं और सभी कार्य निष्काम व नितान्त अनासक्त भाव से करते हैं। जब उनके सान्निध्य में रहने का पर्याप्त अवसर मिलता है, तब उनके स्वर्ण-तुल्य विशुद्ध व्यक्तित्व में बहुमूल्य रत्न-रूपी विशिष्टताएँ प्रकाश में आती हैं।

इस महान् व्यक्ति की **सर्वोत्तम विशिष्टता है**ह्नह्नआचार और विचार में आश्चर्यजनक निष्कपटता। उनका मन सांसारिकता एवं कुटिलता से एकदम रहित है। वे शिशुवत् सरल हैं और उनकी क्रियाओं में प्रत्येक पग पर सरलता प्रतिबिम्बित होती है। मन की दार्शनिक गहराइयों के होते हुए भी

यह सहज स्वतः प्रस्फुटित अकृत्रिमता शीघ्र ही उनकी थोड़ी देर की उपस्थिति से ही प्रकट हो जाती है, जो एक समय में एक गम्भीर सन्त और शिशु के अनूठे मेल को प्रदर्शित करती है। जिन व्यक्तियों का स्वामी जी से सम्पर्क रहता है, उनके हृदय स्वामी जी की स्वभावगत सरलता के कारण प्रभावित हो जाते हैं।

अगाध आत्म-विश्वास होते हुए भी उनमें श्रेष्ठमन्यता की भावना लेशमात्र भी नहीं है। वे सबको आत्मवत् समझते हैं और सबके साथ उन्मुक्त एवं समता का व्यवहार करते हैं। कुछेक क्षणों की बातचीत के पश्चात् व्यक्ति उनको पूर्णतया अपना समझने लग जाता है। वे सबसे, चाहे कोई बच्चा ही क्यों न हो, परामर्श लेने को तैयार रहते हैं; क्योंकि वे किसी को भी कम महत्त्वपूर्ण तथा बुद्धिहीन नहीं समझते।

प्रमुख विशेषता, जिसकी उनमें प्रधानता है, वह हैहृहृशीतल ज्योत्स्ना के समान परम शान्ति जो उनके रोम-रोम में व्याप्त है। उन्होंने लक्ष्य की प्राप्ति कर ली है और उसी में स्थित हैं। किसी भी स्थिति में वह उत्तेजना या भावना के वशीभूत नहीं होते। प्रत्येक स्थिति में वह शान्ति की साकार मूर्ति हैं। उनकी उपस्थिति में यदि कोई व्यक्ति किसी कार्य को अव्यवस्थित व अनियमित ढंग से करता है, तो उसका संशोधन मौन असहमति एवं गम्भीरता दर्शा कर करते हैं। आवश्यकता पड़े, तो वे उस स्थान को भी छोड़ देते हैं। वे कभी भी क्रोधावेश के वशीभूत नहीं होते।

कई ऐसे अवसर भी आये जब भक्तों ने उन्हें संकीर्तन के लिए निमन्त्रित किया। एक बार वे ज्वर से इतने अस्वस्थ थे कि उस स्थिति में अन्य व्यक्ति शय्या पर ही पड़ा रहता; किन्तु स्वामी जी ज्वर की उपेक्षा करके शीघ्र ही संकीर्तन करने के लिए चले गये। अस्वस्थता की स्थिति में कीर्तन करना भक्तों को अच्छा न लगता। किन्तु स्वामी जी स्वास्थ्य के प्रति सावधान रहते हुए भी आवश्यकता पड़ने पर त्याग को ही अनिवार्य मानते।

उनकी समस्त क्रियाएँ उनके पर-हितार्थ जीने के दृढ़ सिद्धान्त को सूचित करती हैं।

सभी वस्तुओं और व्यक्तियों में भलाई ही देखने की दुर्लभ प्रवृत्ति का उनमें अति-आश्चर्यजनक मात्रा में विकास हो चुका है। उनमें दूसरों में त्रुटियों और दोषों को देखने की प्रवृत्ति लेशमात्र भी नहीं है। कई ऐसे व्यक्ति प्रायः उनके पास आते रहते और कार्य करते जिनमें विभिन्न प्रकार की कई कमजोरियाँ होतीं और वह वस्तुतः कई रूपों में अशोधनीय थे। यदि उसमें एक गुण भी लेशमात्र दिखायी दे जाता, तो उस पर अपना वरद हस्त रखते और उसकी समस्त कुटिलताओं की ओर से आँखें मूँद लेते।

उनकी सहिष्णुता और क्षमाशीलता के अनेकों उदाहरण हैं । बहुत गम्भीर अपराध को न देख कर वह किसी के भी गुण को दशगुना बढ़ा कर देखते थे। थोड़ी-सी प्रतिभा, अच्छाई और सेवा ही स्वामी जी से सराहना प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है। वे सोत्साह उस गुण का वर्णन सबसे करेंगे, मानो वह बहुत ही आश्चर्यजनक, सराहनीय एवं पूर्णत्व के शिखर पर पहुँच चुका हो।

जो उनके बहुत ही निकट-सम्पर्क में आये, उन्होंने देखा कि स्वामी जी **एक ऐसे अलौकिक गुण** से सम्पन्न हैं जो बहुत खोजने पर भी दुर्लभ है। अपने प्रति किये गये गम्भीर अपराधों को भी वे शीघ्र भूल जाते हैं। तथापि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से की गयी उनकी सेवा को हृदय में सदैव सँजोये रखते हैं। **'भूलो और क्षमा करो'** सिद्धान्त उपदेश के लिए सरल है; किन्तु विरली ही कोई ऐसी महान् आत्मा पायी जाती है जो इस गुण को सहज आचरण में लायी हो। यह गुण मैंने इन महान् सन्त में पराकाष्ठा तक पहुँचा हुआ पाया है।

ऐसे लोग भी थे जिन्होंने उनके सत्कार्य को हर सम्भव उपाय से बिगाड़ने का प्रयास किया, खुले रूप से अपशब्द कहे और उनकी निन्दा

की। स्वामी जी उनके दुष्कृत्यों के क्षणों में भी उनके प्रति मृदुल व शिष्टता का व्यवहार करते थे। हम सुनते हैं कि स्वर्गाश्रम के साधना-काल में उन्होंने इस 'भूलो और क्षमा करो' के गुण का अर्जन करने को अपना मुख्य उद्देश्य बना लिया था। उनके सन्त साथी उनको हानि पहुँचाते, किन्तु आप उनकी सेवा असामान्य रूप से करते थे।

स्वामी जी ने एक दुरात्मा आततायी हत्यारे को, जो प्रकट में साधुवेश में रहता था, वर्ष-भर आदर और विशेष प्रेम का व्यवहार करने के लिए चुन रखा था। जब स्वामी जी की उस क्षेत्र में लोकप्रियता के प्रति ईर्ष्यावश कई उपद्रव हुए, तब भी वे अपने प्रभाव के बावजूद किसी भी प्रतिकार की भावना के बिना उन पीड़ादायक क्लेशों को सहते रहे। उन दुरात्माओं में से जब भी कोई अस्वस्थ हो जाता था, तो स्वामी जी स्वेच्छा से उसके स्थान पर पहुँच कर उसकी सुश्रूषा एवं उपचार करते थे जिसे देख उन दुरात्माओं को विश्वास न होता और वे चकित रह जाते।

साधकों के हित-चिन्तक

स्वामी जी की जो दो प्रमुख विशिष्टताएँ क्रमबद्ध रूप से सामने आयीं, वे हैं—पुस्तक-लेखन का कार्य और युवा जिज्ञासुओं को प्रशिक्षित करना। **लेखन-कला के प्रति उनका असाधारण उत्साह अवर्णनीय है।** जब किसी उपयोगी विषय-सम्बन्धी विचार उनके मस्तिष्क में कौंधता, तो तुरन्त ही वे उसे लेखबद्ध कर लेते। कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उर्वरा मस्तिष्क में एकाएक उद्भूत होने वाली विचारधारा को तुरन्त लेखबद्ध कर लेते।

बहुत बार ऐसा होता कि कोई प्रेरणादायक विचार अर्ध-सुप्तावस्था में उन्हें आ जाता, तो शीघ्र ही पूर्णरूपेण जाग कर दीपक जला कर बैठ जाते और रात्रि के शान्त वातावरण में लिखना आरम्भ कर देते। अपनी कृतियाँ और पुस्तकें उन्हें सन्तानवत् प्रिय हैं। उन पर उन्हें वैसा ही समुचित गौरव है

जैसा ममतामयी माँ को सन्तान पर होता है। नयी पुस्तक के मुद्रण के समय उनके विषय, प्रूफ, आकार आदि के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए उन्हें अत्यधिक आनन्दानुभूति होती है। एक नयी पुस्तक से तात्पर्य है दिव्यता के आन्दोलन के शस्त्रागार में संग्रहीत एक नया शस्त्र।

उनका जो अति-प्रिय विषय है, जो उनके जीवन का प्राण है, जिससे उनका विशिष्ट व्यक्तित्व निर्मित होता है, वह है **जिज्ञासुओं को प्रशिक्षित करना**। साधना-काल में उनके स्वास्थ्य एवं हित का ध्यान रखते हुए, प्रत्येक सर्व-सुलभ सुविधाएँ प्रदान करते हुए उन्हें बहुमुखी कुशल बनाने का इस सन्त का सतत प्रयास रहा है।

युवा साधकों के हृदय में यदि वह तनिक भी आध्यात्मिक लालसा पाते, तो उन्हें अपना पितृवत् वात्सल्य उँडेलते तथा हिमालय के रमणीय दृश्य, पावनी गंगा माता का सान्निध्य, सुखदायी कक्ष, मनोरम मन्दिर, भजन-कक्ष, शुद्ध आहार, स्वास्थ्य-रक्षा-सम्बन्धी प्रत्येक आवश्यकता आदि सभी सुविधाओं से सम्पन्न करते। वे सबके हित की सभी सुविधाएँ प्रदान करने में कोई कमी न रहने देते।

बिना किसी भी भेद-भाव के साधकों के प्रति पूर्ण समता तथा प्रेम का व्यवहार करना उनके स्वभाव एवं आचरण का प्रमुख अंग है। भले ही साधक मन्द बुद्धि वाला व अशिक्षित या तीव्र बुद्धिमान्, संस्कारवान् हो, प्रवीण विद्यार्थी हो या ऐसा कार्यकर्ता जिसमें बहुत त्रुटियाँ भरी हों, चाहे पुराना आश्रमवासी या नवागन्तुक कोई भी होह्वस्वामी जी के लिए सभी प्रकार के साधक समान रूप से मूल्यवान् हैं।

आश्रमवासी साधकों के प्रति उनका व्यवहार आश्चर्यचकित कर देने वाला दैवी प्रकाशन है। निःस्वार्थता और निष्कामता की तो उनमें पराकाष्ठा है। वे साधकों का प्रशिक्षण अवैयक्तिक भाव से करते हैं। स्वामी जी किसी भी व्यक्ति की विशेष प्रतिभा को भाँप लेते और उसके व्यक्तित्व के पूर्णतया

उद्घाटन में सहायता देते हैं। सच्चे अर्थों में ये उसको शिक्षित बनाते हैं। व्यक्ति के विकास के लिए अत्यधिक उपयुक्त कार्य दे कर ये ऐसा करते हैं। साधकों से कार्य लेते हुए वह सेवा से अधिक उसकी प्रगति का ध्यान रखते और राजाओं की भाँति उसकी सेवाओं की प्रतिपूर्ति कार्य की मात्रा से अधिक करते। सहज स्वभाव से ही उनकी भावनाएँ संकीर्ण न हो कर विस्तृत व उदार हैं।

यह भावना उनमें इतनी अधिक सुदृढ़ है कि वह कार्यकर्ता को अमित प्रतिदान दे कर ही रहेंगे। वे कार्यकर्ताओं तथा साधकों के प्रति सीमातीत आभार प्रदर्शन करते हैं। स्वामी जी की दृष्टि में साधक के हित से बढ़ कर अन्य कोई भी वस्तु प्रिय या बहुमूल्य नहीं है। साधक की अस्वस्थता में वह उसके उपचार की व्यवस्था शीघ्र तथा पूर्णतया आश्चर्यकर ढंग से करते हैं। वे साधकों का बहुमूल्य मूल्यांकन करते हैं और उनके हित का ध्यान रखते हैं तथा निष्काम प्रेम की वर्षा करते हैं। यह सब स्वामी जी के अन्तरंग व्यक्तित्व के सुन्दरतम पक्ष हैं। आश्चर्य नहीं यदि सैकड़ों उत्सुक साधक उनकी सेवा में पहुँचते हैं। इस प्रकार इस दिव्य कार्य में सक्रिय स्वयंसेवकों का अभाव कभी नहीं खटकता।

स्वामी जी यह सब कैसे करते हैं? क्या वह अपने सिद्धान्त या विचारों को उन पर आरोपित करते हैं? क्या अपने अनुयायियों में वृद्धि करके उन्होंने एक पथ, सम्प्रदाय या विशिष्ट परिधि निर्मित करने का प्रयत्न किया है? विलक्षण बात तो यह है कि वे प्रिय साधकों को अपनी मान्यताओं से कदापि विचलित नहीं होने देते। उन्हें अपने ही धर्म का परिपालन करने को कहते हैं और कोई मन्त्र या विशेष साधना अपनाने को बाध्य नहीं करते। किसी को न तो अपनी निष्ठा परिवर्तन करने को कहते हैं और न ही उसे अपनी निसर्ग-प्रदत्त पूर्व-मान्यताओं को त्यागने को कहते हैं।

उदाहरणतः पूज्य उत्तम, अपने सौम्य स्वभाव के कारण वे इस नाम को वास्तव में सार्थक करते थे, नाम का एक बौद्ध भिक्षु आश्रम में योग-प्रशिक्षण के लिए निवास करता था, तो रात्रि-सत्संग में स्वामी जी उन्हें बौद्ध-मत की प्रार्थना तथा पाली भाषा के भजन गाने के लिए कहते। दो पारसी भक्त थे जिनमें से एक शान्त व पावन बी. लुंगराना और दूसरा स्नेही और सरल हृदय वाला डेरियस के. था, उनके सम्बन्ध में देखा गया कि जब स्वामी जी उन्हें जोरास्ट्रियन तथा जैन्द अवेस्ता में से किसी अंश का गान करने को कहते, तो वे स्वामी जी के निवेदन के विपरीत 'ॐ नमः शिवाय' का ही गान करते। इसी प्रकार दो और साधक, जो मन्त्र-दीक्षा लेने स्वामी जी के समीप आये थे, ऐसा ही करते।

एक लिवरपूल का अँगरेज साधक था, दूसरा महाराष्ट्र का दत्तात्रेय का उपासक था। अँगरेज व्यक्ति को 'ॐ जीसस' जपने और लिखने को कहते। महाराष्ट्रियन जो शिव के पंचाक्षर मन्त्र की (जो स्वामी जी का अपना मन्त्र है) दीक्षा लेना चाहता था, किन्तु स्वामी जी ने उसे 'दत्तात्रेयाय नमः' जपने को कहा और इसमें परिवर्तन की आज्ञा नहीं दी। उन्होंने उसे दत्तात्रेय की ही दीक्षा दी। वे अपने साधकों के साथ व्यवहार में कोई गोपनीयता नहीं रखते तथा चेला-मण्डली को बढ़ाने के लिए और कोई विशेष पद्धति नहीं अपनाते।

यह है आज की महान् विभूति का आकर्षक चित्रह्वह्वएक भद्र, निष्कपट आत्मा, महानता, सरलता और सादगी की समन्वय मूर्ति, सदैव शान्त विग्रह, किसी का दोष न देख सकने वाले, किसी के द्वारा किया गया अहित याद न रखने वाले, कभी किसी भी स्थिति में क्रुद्ध न होने वाले, मौन शक्ति साकार, प्रेम और मृदुता की पृष्ठभूमि में एक आत्म-विश्वासी, विचार-प्रसार में दृढ़ निश्चयी अनुशासित, उद्देश्य-पूर्ति में उत्कट उत्साही और प्रार्थनानिष्ठ।

अनुशासन–बद्ध जीवन–शैली के प्रेरक

साधना–काल की प्रारम्भिक अवस्थाओं में कठोर अनुशासन, तपश्चर्या, अन्तर्द्वन्द्व, निस्पृह अभीप्सा का अनवरत अथक प्रयत्न, दृढ़ संकल्प की प्रगतिशील विजय, निश्चित दिनचर्या एवं मायावी रूप मन पर उत्तरोत्तर विजय से उनका व्यक्तित्व पूर्णतः निखर उठा, जिसका उद्‌घाटन इस संन्यासी व्यक्तित्व में प्रत्यक्ष हो रहा है। वैराग्य और आध्यात्मिक उपलब्धियों से कई शिक्षाप्रद तथ्यों का प्रकटन होता है। जीवन के प्रारम्भिक वर्ष उस बुनियाद बनाने का काम कर रहे थे जिस पर परवर्ती प्रेरणादायी आध्यात्मिक जीवन का मकान निर्मित होना था।

वे अदम्य साहस से सम्पन्न हैं। सम्मानित अतिथियों की अभ्यर्थना करने, स्वागत–भाषण देने या अभिनय के लिए वे अपने मित्र गणों तथा विशिष्ट जनों के आकर्षण का केन्द्र बने रहते। विनम्र होते हुए भी अवसर आने पर वे निर्भय हो विशिष्ट जनों के समक्ष आ जाते। उनकी यह निर्भयता अब भी उनमें प्रमुख है और स्वर्गाश्रम में साधना के दिनों में इससे उन्हें बहुत सहायता मिली है। यह विशेषता अब भी उनके स्वभाव में विद्यमान है। अंशतः उनके स्पष्टवादी व निर्भीक सुधारक होने का रहस्य भी इसी में है। जनता की आलोचना उन्हें कभी विचलित नहीं करती। लोक–कल्याण से सम्बन्धित किसी योजना के लिए कटिबद्ध हो जाने पर वे किसी की राय पर ध्यान नहीं देते।

जो तन्मयता और उत्साह आज स्वामी जी के स्वभाव में दृष्टिगोचर होता है, यह स्वभाव उनका चिकित्सक–विद्यार्थी–काल में भी था। उनकी उपस्थिति में जब यह विरल टिप्पणी सुनने में आयी, तो स्वामी जी ने एक बार कहाह्नह्न''मुझे यह नहीं मालूम कि काम को अधूरा कैसे छोड़ा जाता है? मैं सदैव काम को पूर्ण व सम्यक् ढंग से किया करता था तथा पूरा करके

ही छोड़ा करता था। सतत तत्पर रहने तथा सजग रहने का मेरा सहज गुण बन गया है।

''विश्राम का मेरी दृष्टि में कोई अस्तित्व नहीं। मैं सदैव सजग तथा व्यस्त रहता हूँ। आपको जीवन के प्रति शाश्वत शिष्य की तरह यही दृष्टिकोण रखना चाहिए और अपने को सदैव परीक्षार्थी समझना चाहिए। प्रत्येक घड़ी, प्रत्येक समय, प्रत्येक दिन नये विषय को सीखने के लिए उत्सुक रहिए। मेरी तरह बौद्धिक सेवक बनिए। आप हर एक से कुछ-न-कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। एक जिज्ञासु के लिए सृष्टि के कण-कण से उपदेशामृत झरता है।

''किसी भी अनुभव की उपेक्षा मत करिए। संसार के हर महान् उदाहरण से कुछ प्रेरणा व शिक्षा ग्रहण करिए। इस प्रकार शायद किसी समय आपके प्रति की गयी अचेतन में सुप्त आलोचना आपके जीवन में उभर कर आपको आपत्ति से बचा ले और आपके जीवन की धारा को ही परिवर्तित कर दे। हर वस्तु से सार-संग्रह करके उसे अपने मस्तिष्क में सँजो के रखिए। छोटी-छोटी बातों के प्रति उदासीनता वैराग्य का लक्षण नहीं, बल्कि उपेक्षा की तामसिक प्रवृत्ति का लक्षण है।''

उपर्युक्त प्रकार की अपनी ग्राह्य शक्ति को स्वामी जी ने बड़ी सावधानी तथा विवेक से बनाये रखा है। अपनी उपस्थिति में प्रस्तुत हर नये सुझाव, नये विचार, नयी सूचना को तत्क्षण वे अपने पास रखी नोटबुक में लिख लेते हैं। नोट करने के लिए वे सदैव अपने पास दैनन्दिनी रखते हैं। लौकिक तथा आध्यात्मिकदृष्टिदोनों दृष्टिकोणों से इस अभ्यास के व्यापक हित के प्रति वे आश्वस्त हैं।

मैंने कई बार दिव्य जीवन संघ के कार्यालय में बिछी हुई पीठिका पर उनके विराजमान होते समय इसका निरीक्षण किया। उस समय कभी किसी उत्तेजित जिज्ञासु की पिपासा शान्त करने के लिए वे पत्रोत्तर लिखते, तो

कभी शंका-समाधान अथवा प्रश्नोत्तरी करते। निकट से टाइपराइटर की टक-टक आवाज और पास के कमरे से ठक-ठक की आवाज आ रही है जहाँ कोई सेवक नयी पुस्तकों पर कार्यालय की मुहर लगा रहा है। बाहर से हथौड़ी से पुस्तकों की पेटिका पर कील ठोकने का शोर आ रहा है। कक्ष से कुछ दूर सड़क पर चलने वाली मोटर गाड़ियों की कर्ण-कटु ध्वनि और गंगा की धारा में तैरती नाव में यात्रियों के पावन गान का उनकी भाव-मुद्रा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

यही नहीं, स्वामी जी के पार्श्व में अभ्यागतों का समूह बैठा है। कोई हिन्दी पुस्तक के लिए याचना कर रहा है, तो कोई मेज पर फल-फूल भेंट कर रहा है। कोई शिशु चंचल व बातूनी है और कोई पहाड़ी रोग-ग्रस्त पुत्री के लिए औषधि की माँग कर रहा है। इन सबके मध्य पीठिका पर शान्त मुद्रा में विराजमान स्वामी जी आस-पास के इस वातावरण से अविचलित हैं और उनकी लेखनी अपनी सहज गति से चल रही है। वह अपने इस कार्य में इतने अधिक संलग्न हैं कि जब तक पत्र पूरा नहीं होता, वह अपने चश्मे को आँखों से हटा कर 'केस' में वापस नहीं रख देते और लेखनी को 'कैप' लगा कर मेज पर नहीं रख देते, तब तक वह आस-पास के वातावरण से अनभिज्ञ ही रहते हैं।

जब उनकी दृष्टि समक्ष बैठे अभ्यागतों पर पड़ती है और उनको शोरगुल का भास होता है, तब वे कह उठते हैंह्नह्न''कृपया यह ठक-ठक बन्द करो और एस. को कहो कि वह पुस्तकों पर मुद्रा-अंकन कुछ समय उपरान्त करे।'' एकाग्रता का अभ्यास प्रत्येक जिज्ञासु व सामान्य जन के लिए अनिवार्य है; क्योंकि एकाग्रता का सम्बन्ध समय और स्थिति-विशेष में किये जाने वाले कर्मकाण्ड से न हो कर साधक की अभ्यस्त मानसिक स्थिति से है। स्वामी जी के अनुसार धारणा और ध्यान का अभ्यास कोई चमत्कारिक जादूगरी का विषय नहीं। यह तो हर छोटे काम को रुचि व ध्यानपूर्वक करने वाले व्यक्ति को सहज ही प्राप्त हो जाता है।

छोटे-से-छोटे कार्य को व्यवस्थित ढंग से न करने वाले का मस्तिष्क कमजोर हो जाता है, जिस कारण वह ध्यान की क्षमता भी खो बैठता है। स्वामी जी कहते हैंह्न ''चाहे आप पेन्सिल बनायें या टिकट चिपकायें, उसको भी उतनी ही तन्मयता व सावधानी से करिए जितनी तन्मयता से एक जौहरी राजसी अँगूठी में हीरा जड़ता है या एक नेत्र-चिकित्सक नेत्र की शल्य-चिकित्सा का कार्य करता है। जो भी कार्य आप करेंह्नचाहे भोजन करने का हो या दन्त-धावन का, पढ़ने का हो या लिखने का, चाहे जूते साफ करने का ही हो, उसे पूर्ण तन्मयता से ध्यानपूर्वक करें। इस अभ्यास से एकाग्रता प्रभावी ढंग से विकसित होगी।''

विद्यार्थी-काल के पश्चात् मलेशिया तथा सिंगापुर के राज संघ के चिकित्सक के रूप में स्वामी जी ने चिकित्सा तथा मानव-समाज-सेवा के कार्यों में वही तल्लीनता दिखायी। मलाया में व्यतीत किये दश वर्षों में वह निष्कलंक रहे। निस्सन्देह आध्यात्मिक साधना में तत्पर एक साधक के लिए एकाग्रता तथा उसकी प्राप्ति की मनोवृत्ति अनिवार्यतया धार्मिक भावना से सम्बन्ध रखती है। उसको अपनी हर क्रिया आध्यात्मिक आदर्श से सम्बन्धित करनी होती है। सांस्कृतिक उत्थान के सम्बन्ध में सबसे अधिक महत्त्व की बात यह है कि व्यक्तिगत जीवन में ऐसा प्रशिक्षण शैशव-काल से आरम्भ कर देना चाहिए।

मैं यह देख कर आश्चर्यचकित रह गया कि ये तपस्वी भारतीय सभ्यता व संस्कृति के पुनरुत्थान जैसे उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऋषिकेश जैसे एकान्त स्थल में बैठ कर दीर्घ काल से एकाग्रता, तन्मयता तथा तल्लीनता जैसे सिद्धान्तों का प्रयोग कर रहे हैं। अपने निकट के क्षेत्र में किये गये प्रयोग से उनको अभूतपूर्व सफलता मिली है। आश्रम द्वारा संचालित प्राथमिक पाठशाला इसी प्रयोग का एक उदाहरण है। नन्हे-मुन्ने जो अभी तुतलाते हैं, कीर्तन करने व राम-सीता-कीर्तन में कुशल होते जा रहे हैं। साधना-सप्ताह तथा अन्य ऐसे ही अनेक सुअवसरों पर आये अभ्यागत विस्मित रह जाते हैं,

जब वे देखते हैं कि इतनी बड़ी सभा में एक छोटा-सा बालक, जिसको उठा कर मंच पर खड़ा किया जाता है, प्रणाम करता है, हिन्दी तथा अँगरेजी में संक्षिप्त भाषण देने के पश्चात् मधुर स्वर में 'राधाकृष्ण', 'गोपालकृष्ण' का कीर्तन आरम्भ कर देता है। दूसरा बच्चा आ कर 'उपनिषद्' व 'गीता' में से उद्धृत कुछ पंक्तियों को अपनी तोतली भाषा में अविराम गति से प्रस्तुत करके आपको स्तब्ध कर देता है। बड़ी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि स्वामी जी यद्यपि अपने विचारों व सिद्धान्तों में अद्यतन प्रतीत होते हैं, तथापि दैनिक व्यवहार में देश की सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप बने रहने के प्रति पूर्णतया सजग रहते हैं।

''अच्छी शिक्षा जितनी शीघ्र प्रारम्भ की जाये उतना ही अच्छा है।'' इससे भी आगे बढ़ते हुए वे मानते हैं कि बच्चे की शिक्षा उसके जन्म से पूर्व ही प्रारम्भ हो जानी चाहिए। उनका कथन है—''गर्भस्थ शिशु के मस्तिष्क पर माँ की प्रत्येक क्रिया का गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि एक गर्भवती स्त्री कीर्तन, जप तथा धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन में समय व्यतीत करती है और अपनी इस अवधि में जीवन को पूर्ण पवित्र बनाये रखती है, तो वह गर्भस्थ शिशु आध्यात्मिक संस्कारों से सुसम्पन्न होगा। उसकी चित्त-वृत्ति जन्म से ही आध्यात्मिक होगी।''

पुनः कहे गये स्वामी जी के शब्द हैं—''बच्चों का मस्तिष्क सुकोमल व लचीला होता है जिसे बिना अधिक परिश्रम के सुन्दरता से निर्मित किया जा सकता है। जो भी संस्कार बाल्यावस्था में डाले जाते हैं, उनका प्रभाव आजीवन रहता है। वे संस्कार अमिट होते हैं।'' जब कभी कोई गृहस्थी स्वामी जी के पास आता है, तो वे उससे यह अवश्य पूछते हैं कि वह अपनी सन्तान को बचपन से ही शिक्षा-दीक्षा उचित विधि अनुसार दे रहे हैं अथवा नहीं।

संसार के सर्वस्व

जो लोग ज्ञान, पथ-प्रदर्शन, शान्ति एवं प्रेरणा-प्राप्ति हेतु इनके पास पहुँचते हैं, उन असंख्य लोगों को ये शरण तथा आश्रय प्रदान करते हैं। स्वामी जी घने अशोक या पीपल के वृक्ष की तरह शरणागत की रक्षा करते हैं, आध्यात्मिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उनको सजग करते हैं तथा पथ-प्रदर्शन के द्वारा जीवन के अर्थ की ओर प्रेरित करते हैं। इसका अनुभव उसी को है, जिसकी कठिनाइयों, शंकाओं तथा समस्याओं का समाधान स्वामी जी ने स्वयं किया है और ऐसे लोगों की गिनती एकाध नहीं, असंख्य है।

एक बार नागपुर से डाक्टर बी. ए. वैद्य ने अपने पत्र में स्वामी जी को लिखाह्लह्ल''आपको अपने लिए कुछ नहीं करना है। न ही आपको अपनी चिन्ता है, तो भी आप सैकड़ों परिवारों का दायित्व स्वयं वहन करते हैं।'' वास्तव में ऐसा ही है। स्वामी जी का परिवार अकल्पनीय रूप से बहुत बड़ा है। इस परिवार के भाँति-भाँति के सदस्यों की अनेकविध इकाइयाँ विशाल उपमहाद्वीप के कोने-कोने में ही नहीं हैं, अपितु पोलैण्ड, रूमानिया, यूगोस्लाविया, अमेरिका, इंगलैण्ड आदि देशों के निवासी भी अपने को इस विश्व-कुटुम्ब का सदस्य मानते हैं।

स्वामी जी को इस प्रकार के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित विषयों में अति ही व्यस्त देख कर मुझे जिज्ञासा होती थी। स्वामी जी ने इसको ताड़ लिया और कहाह्लह्ल''मैं सोचता हूँ कि मेरी गृहस्थी विश्व की सहस्रों गृहस्थियों से भी बहुत विशाल है। उनकी गार्हस्थ्य चिन्ताओं की एक सीमा है; पर मेरे परिवार की कोई सीमा नहीं है। असीम कर्तव्यों की भी गणना नहीं हो सकती है। मेरे क्रिया-कलाप का इतना अधिक विस्तार है कि विश्राम के लिए मैं सोच भी नहीं सकता।''

उन्होंने पुन: कहाह्लह्ल''मैंने कभी स्वप्न में भी न सोचा था कि ईश्वर मुझे इस प्रकार समस्याओं में जकड़ देगा। मैंने सर्वस्व त्याग दिया, सब बन्धन तोड़ फेंकें। यह सोचा था कि अब तन्मयता के साथ मधुर राम-नाम का सदैव स्मरण करता हुआ एकान्त का आनन्द लूँगा; परन्तु देखो, ईश्वर ने मुझे इतना विशाल परिवार दे दिया है और इसके सदस्य मुझ पर इतने अनुरक्त हैं कि मैं चाहूँ अथवा न चाहूँ, वे मुझे बिलकुल अपना समझते हैं। क्या मालूम, भगवान् ने मुझे इसीलिए जन्म दिया हो? जब तक मुझसे कोई अंशमात्र भी लाभान्वित होता रहेगा, मैं इसमें ही प्रसन्न रहूँगा कि सम्पूर्ण रूप से उनका अपना रहूँ। **जो मुझे सर्वस्व समझते हैं, मैं भी उनके प्रति सर्वस्व समर्पण कर देता हूँ।**''

इतना तो स्पष्टतया सत्य है कि स्वामी जी के पास विश्राम के लिए कोई समय नहीं है। वे पर-सेवार्थ अपने शारीरिक सुख की बिलकुल चिन्ता नहीं करते। शरीर को तो अपना समझते ही नहीं। उनके साथ दो-तीन दिन के सम्पर्क से यह स्पष्ट ज्ञात हो जायेगा कि उनका अधिकांश समय इस दिव्य परिवार के सहस्रों बच्चों की समस्याओं, कठिनाइयों, दु:खों और संशयों को सुलझाने में ही व्यतीत होता है।

कोई भी व्यक्ति जिसको अलौकिक अनुभव होते हैं, कल्पना में अनेक प्रकार का आभास होता है, ध्यान में दिव्य ज्योति की चकाचौंध होती है, शरीर-प्रणाली में अप्रकट शक्ति-प्रवाह-सा अनुभव होता है, तो वह पुलकित व व्याकुल हो कर स्वामी जी को प्रश्नों से परिपूर्ण एवं पथ-प्रदर्शनार्थ निवेदन-युक्त पत्र लिखता है। दूसरा व्यक्ति किसी विषय-विशेष का अध्ययन करता है, शंकाओं का समाधान चाहता है तथा ज्ञान-प्राप्ति हेतु याचना करता है। तीसरा व्यक्ति भी जिसके सामने जीवन-पथ पर दो मार्ग हैंह्लह्लवह किस मार्ग को अपनाये, इसके लिए समाधान चाहता है।

इनके अतिरिक्त ऐसे भी लोग हैं, जो व्यथाओं व चिन्ताओं के अगाध सागर में गोते खा रहे होते हैं। वे साहस, शान्ति तथा उत्साह व प्रेरणा के लिए स्वामी जी के कर-कमलों से लिखित सन्देश के लिए आकुल होते हैं। प्रधानत: इस प्रकार की समस्याओं को सुलझाने में उनका दैनिक जीवन व्यस्त रहता है। व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित कर्तव्य-पूर्ति हेतु भी स्वामी जी पर निर्भर रहते हैं। रोग-ग्रस्त बच्चों के माता-पिता, असमय ही मृत्यु को प्राप्त बच्चों के माता-पिता, शोकाकुल विधुर, कातर विधवा, भाग्य-चक्र में फँसे ऐसे उद्योगपति जो समृद्ध एवं सम्पन्न थे, अब कंगाल हो गये हैं, ऐसे विद्यार्थी जिनकी प्रगति को एकाएक आघात पहुँचा हैह्वह्वऐसे व्यक्ति स्वामी जी के पास सान्त्वना, शान्ति तथा प्रेरणा के लिए दौड़े चले आते हैं। इन सबका एक ही आग्रह होता है कि स्वामी जी उनकी व्यथा को एकचित्त हो कर सुन लें तथा अपनी मृदु वाणी से उनको सान्त्वना दें।

स्वामी जी भी उनकी दु:ख-भरी गाथा सुन कर ऐसे व्याकुल हो जाते हैं मानो उन पर ही बीती हो अथवा बीत रही हो। उनका हृदय द्रवित हो उठता है। जब सहानुभूति दिखाते हुए उनके दु:ख का बोझ स्वामी जी स्वयं वहन करने का आश्वासन देते हैं, तब वे लोग ऐसा अनुभव करते हैं मानो उनके कष्ट का सारा बोझ उतर गया है और उनके शरीर में शान्ति तथा नव-शक्ति का संचार हो रहा है।

असफल विद्यार्थियों के साथ वार्तालाप करने में स्वामी जी बड़ा उत्साह दिखाते और उन्हें अपनी सुदृढ़ आशावादिता से प्रोत्साहित करते हैं। शोक-सन्तप्त बच्चे को वे कोमल-चित्त पिता की तरह मधुर शब्दों में सान्त्वना देते हैं। काल-चक्र की गति बता कर मृत्यु की अनिवार्यता स्पष्ट करते हुए उनको ऐसे अन्य कई दु:खी लोगों का उदाहरण देते हैं। ऐसे लोगों का दृष्टान्त देते हैं जिन्होंने इसी तरह की परिस्थिति में अपने दु:खों को मूक रह कर सहन किया तथा ऐसी विपदा की स्थिति में भगवदिच्छा पर निर्भर

रहे। स्वामी जी उनको भी ऐसे ही साहसी दृष्टान्तों का अनुगमन करने का आग्रह करते हैं।

ऐसे निराश और दुःखी व्यापारी लोग जिनको बड़ी हानि उठानी पड़ी, उनको स्वामी जी धन की व्यर्थता तथा त्याग-वैराग्य के विषय में इस प्रकार समझाते कि वे भी अपने घाटे को भूल कर अपनी जड़-बुद्धि को कोसने लगते। इस प्रकार का क्रम अनवरत रूप से चलता। इस संसार में काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग तथा द्वेष की ज्वाला से सन्तप्त थके-हारे और बोझिल मन वाले लोगों को स्वामी जी दुःखों से छुटकारा दिला कर आध्यात्मिक सम्पदा द्वारा उनके हृदय में शान्ति-विश्रान्ति का साम्राज्य स्थापित कर देते।

ऐसे व्यक्तियों के प्रति स्वामी जी का व्यवहार अति ही मृदुल होता। देखने या सुनने में विस्मय तो होता है कि किस प्रकार वे दुःखी लोगों की हर सुख-सुविधा का स्वयं ध्यान रखते। अपने ही कर-कमलों से न केवल उनको खाना परोसते, बल्कि अपने सामने बैठा कर खिलाते। इसका परिणाम यह होता कि वे लोग निराशा के अन्धकार से निकल कर आशा के प्रकाश में विचरण करने लगते। मन भी उनका स्थिर तथा शान्त हो जाता। ऐसे व्यक्तिगत व्यथा से पीड़ित कई भक्तों एवं दर्शनार्थियों के लिए वे सच्चे माता-पिता की तरह ममता तथा वात्सल्य उँडेलते।

अनेक प्रवृत्तियों के मध्य थकान-रहित जीवन में अपने समस्त साधकों काह्वह्वचाहे वे गृहस्थी होते अथवा वैरागी सबकाह्वह्वहित-चिन्तन उनकी दिनचर्या का सबसे औत्सुक्यपूर्ण अंग होता है। विशेष रूप से वैरागी साधकों के लिए तो वे सर्वस्व हैं। वे ही उनके एकमात्र पथ-प्रदर्शक, मित्र और गुरु हैं; क्योंकि प्रत्येक महत्त्वपूर्ण विषय में पथ-प्रदर्शन के लिए वे मात्र स्वामी जी पर निर्भर रहते हैं। दिन-रात स्वामी जी अपने साधकों की न केवल लौकिक, बल्कि पारलौकिक प्रगति के विषय में भी सोचते रहते हैं।

दिव्य जीवन संघ के छोटे-से कार्यालय में कार्य-भार एवं कार्य-व्यस्तता के बीच में भी कभी-कभी वे अपने प्रिय साधकों से प्रभावपूर्ण शैली में आग्रह करते कि वे अपने हित-चिन्तन एवं निजत्व को सर्वथा भूल कर मानवता की सेवा जैसे उच्चादर्शों की प्राप्ति में पूर्णतया लगे रहें। पुलकित हो कर स्वामी जी निष्काम सेवा को सर्वोत्तम योग, बड़े-से-बड़ा यज्ञ तथा भगवद्-आराधना बता कर उसकी महत्ता बताते।

ऐसे साधक कई बार निराश हो कर सोचते कि मानव-समस्याओं तथा उनके कष्टों का अन्त ही नहींह्वह्वभला वे निरीह और असमर्थ जीव विश्व-कल्याण और मानवता की सेवा जैसे उच्च आदर्शों की पूर्ति कैसे कर सकते हैं? यह तो दिव्य आत्माओं का ही काम है। उन्हें ऐसा निराश देख कर स्वामी जी उनके हतोत्साहित हृदयों को निश्चय सहित आश्वासन देते कि विश्व-कल्याण अथवा मानवता की सेवा जैसे आदर्श की पूर्ति में बिताया गया जीवन कभी असफल नहीं होता। उत्साह का संचार करते हुए वे कहतेह्वह्व''आत्म-साक्षात्कार होता है अथवा नहीं, इसकी चिन्ता मत करो। नैतिक उत्थान के लिए मानव-सेवा में हर सम्भव प्रयास से जुट जायें। नर में नारायण के दर्शन करो। जनता को जनार्दन मानो।''

इससे आगे भी वे कहतेह्वह्व''सदा प्रसन्न-चित्त रहिए। तन-मन लगा कर यह काम कीजिए। निश्चित रूप से आप सौभाग्यशाली और सुखी बनेंगे। न तो अपने भाग्य से असन्तुष्ट रहिए और न उत्थान के लिए हतोत्साहित होइए। मेरी शिक्षाओं को क्रियान्वित करिए। आपके आध्यात्मिक उत्थान की क्या मुझे चिन्ता नहीं है? अच्छा होता, आप जान पाते कि दिन-रात, प्रत्येक क्षण आपके हित के चिन्तन में मेरा हृदय कितना व्याकुल रहता है!''

ऐसा देखा गया कि स्वामी जी को जिज्ञासुओं, साधकों व कर्मचारियों के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की अत्यन्त चिन्ता रहती है। इसके अतिरिक्त सुदूर यूगोस्लाविया और लटेविया में भी कई ऐसे जिज्ञासु हैं जो

अपने को बच्चा मान कर स्वामी जी को पूज्य मानते हैं। उन्होंने पारमार्थिक दिग्दर्शन के लिए अपनी डोर स्वामी जी को सौंप दी है। उनकी समस्याओं व शंका-समाधान हेतु भी स्वामी जी को बहुधा समय निकालना पड़ता है।

आज की मानवता की शान्ति और सच्चे सुख की प्यास बुझाने वाले आनन्द-कुटीर के इस दयालु, कृपालु सन्त को ऋषिकेश के स्थानीय एवं आस-पास के लोग अपने पूजनीय आत्म जनों से भी अधिक मानते हैं। भारतीयों के ही नहीं, बल्कि विदेशियों के लिए भी स्वामी जी ज्ञानदाता हैं और संघर्ष से पीड़ितों के लिए प्रत्येक क्षण प्रत्येक आवश्यकता के पूरक हैं। ये साधारण व्यक्ति को भी अपने कोमल वचनों से इस प्रकार प्रेरणा और शिक्षा देते हैं कि वह इनके वचनों को आज्ञा मान कर शिरोधार्य करता है और अपने दैनिक जीवन में रुचि लेने लगता है, मानो उसका दृष्टिकोण बदल गया हो और उसे आध्यात्मिक नव-जीवन प्राप्त हुआ हो।

पत्रिकाओं और पुस्तकों में अंकित वचन प्रेरक बन जाते हैं जो संसार-भर को नव-जीवन प्रदान करते हैं। उनका उपदेशामृत जीवन-रूपी वृक्ष की लताओं को शीतलता तथा हरियाली प्रदान करता हुआ शरणागत जन-समूह को अपनी छाया तले आश्रय तथा विश्रान्ति देता है। धर्म तथा परमार्थ-पथ के वे पथिक, जिन्होंने साधना को ही अपने जीवन का आधार बना रखा है, उनके लिए स्वामी जी प्रज्ञा और ज्ञान के अखण्ड स्रोत हैं। उनके निजी अनुभव और अलौकिक ज्ञान-सरिता पुस्तकों के रूप में बह निकली है। इन पुस्तकों के माध्यम से स्वामी जी विश्व-भर के साधकों को अपने आध्याात्मिक ज्ञान का सन्देश देते रहते हैं।

जिज्ञासु विशेष के लिए तो वे एक मूक शिक्षक की भाँति हैं, जो उन्हें अपनी पुस्तकों के माध्यम से प्रगति-पथ पर अग्रसर करता रहता है। पुस्तकों में लिखे प्रेरणादायी शब्दों द्वारा अप्रकट रूप से वे सच्चे साथी की तरह पथ-प्रदर्शन करते हैं। साधना के इस कण्टकाकीर्ण मार्ग पर चल रहे साधकों को माया के सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप को, मन की रहस्यमयी गुत्थियों को

सुलझाने; आध्यात्मिक पथ से च्युत करने वाले अनेक कारणों व उनसे बचने के साधनों द्वारा स्वामी जी सदैव अपनी शिक्षाओं, निर्देशों तथा आदेशों के रूप में उनके अन्धकारमय मार्ग को अपने ज्ञान-सूर्य की किरणों द्वारा प्रकाशित करते रहते हैं। साधना में आने वाले विघ्नों तथा बाधाओं को समझा कर उन पर विजय प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकृति और सामर्थ्य वाले साधकों को विभिन्न समाधान एवं साधन बताते हैं।

स्वामी जी इस प्रकार की बाधाओं को पार करने के लिए भक्तियोग, ज्ञानयोग, मनोवैज्ञानिक, नकारात्मक, सकारात्मक उपेक्षा एवं अवहेलना तथा प्रार्थना आदि विभिन्न ढंग बताते हैं। स्वामी जी की यह दिव्य ज्ञान-गंगा, जो उनकी जीवन-रूपी धारा में प्रवाहित हो रही है, साधक के लिए जीवन का आधारभूत स्रोत सिद्ध हुई है। वे प्राणिमात्र का जीवन अपनी ज्ञान-धारा से सींच रहे हैं। वर्ष-भर में दो बार आयोजित साधना-सप्ताह द्वारा व्यक्तिगत सुझाव दे कर स्वामी जी साधकों की इच्छा-शक्ति को दृढ़ बनाये रखते हैं, उनमें प्रेरणा द्वारा प्राण फूँकते रहते हैं। अपने ओजस्वी भाषण द्वारा स्वामी जी साधकों में जीवन-शक्ति का संचार करते हैं। ऐसे अवसरों पर वे अपने सान्निध्य से उनकी भावना को प्रबल बनाये रखते हैं। इस प्रकार स्वामी जी जगत् के लिए दो वरदानों के मूर्तिमन्त स्वरूप सिद्ध हुएह्लह्लएक तो भव-रोग एवं भय-ज्वर से पीड़ित जनता को उत्साहदायक आश्रय-स्थल की उपलब्धि और दूसरा संसार-भर के साधक-वर्ग को पथ-निर्देशन के रूप मे जीवन-दायिनी संजीवनी प्राप्त हुई।

जीवन पथ निर्देशक

विभिन्न अवसरों पर अभिव्यक्त उनकी उक्तियों का संकलन सुबोध शीर्षकों में यहाँ प्रस्तुत है, जो अनौपचारिक बातचीत व कुछ उत्सुक जिज्ञासुओं के प्रश्नों के उत्तरों में अभिव्यंजित हुई। एक ही दृष्टिपात से आप इसके सारतत्त्व से अवगत हो जायेंगे।

वास्तविक जीवन : जीवन की पृष्ठभूमि में एक भव्य उच्चादर्श है जो खाने-पीने तथा सोने से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। पूर्ण स्वतन्त्रता, पूर्ण निर्भयता, पूर्ण आनन्दमय आत्ममय नित्य जीवन ही वास्तविक जीवन है। यह अमरत्व और परम शान्ति की स्थिति है। सभी प्रकार के विनाश, मृत्यु, अशान्ति व कामनातीत स्थिति ही नित्य तुष्टि की स्थिति है।

विश्व : पृथ्वी विशाल सृष्टि के एक बिन्दु मात्र से भी छोटी है। समस्त सृजन अपने अनगिनत सूर्य, चन्द्र तथा तारा-मण्डल सहित परम सत्ता की अनन्तता के एक क्षण तुल्य है। सर्वातीत परम सत्य नित्य, अखण्ड, सत्, चित्, आनन्द है।

लक्ष्य : इस पार्थिव जीवन का लक्ष्य सत्, चित्, आनन्द की परमानन्द स्थिति की अनुभूति करना है। जीवन का उद्देश्य मन की निम्न वृत्तियों को विजित करना, परिसीमाओं से ऊपर उठना और खोये हुए दिव्यत्व को पुनः प्राप्त करना है।

विघ्न-बाधाएँ : क्षणिक ऐन्द्रिक सुखों के आवर्त्त में मानव ने अपने लक्ष्य का विस्मरण कर दिया है। वह समझता है कि वह सब-कुछ जानता है; किन्तु वह अज्ञान के गर्त में डूबा हुआ है। इस भ्रम का कारण अविद्या या माया है। यह रहस्यमयी शक्ति आपके वास्तविक रूप को आच्छादित कर लेती है तथा आनन्द व अमरत्व की प्राप्ति में बाधक बनती है। अतिशय अहं-भावना, मानसिक चंचलता और ऐन्द्रिक सुखों की सतत लालसा के रूप में माया मानव को भ्रमित करती है।

सांसारिक जीवन : इस जगत् का जीवन अव्यवस्थित, अपूर्ण तथा अशान्ति से परिपूर्ण है। सांसारिक विषय-सुख-भोगों की कामना ही इस दुःख का कारण है। समस्त कामनाएँ, आसक्तियाँ, निराशाएँ और यातनाएँ सदा के लिए विनष्ट हो जायेंगी, जब यह अनुभूति हो जायेगी कि शान्ति आपके हृदय में स्थित है। आपके भीतर ही आनन्द का सागर है।

एकमात्र उपाय : मानव-शरीर ही एकमात्र ऐसा माध्यम है, जिससे हम भव-सागर को पार कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है। मानव-जन्म ही महत्त्व एवं बहुमूल्य वरदान है। असावधानी और ऐन्द्रिक सुख में जीवन को व्यर्थ ही मत गँवाओ, अपितु प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करो। यदि इस दुर्लभ अवसर को खो दिया, तो यह पुनः प्राप्त नहीं होगा। समय गतिशील है । विघ्न-बाधाएँ व विरोधी शक्तियाँ सर्वत्र हैं, तो भी मुक्ति के लिए यही समुपयुक्त स्थान एवं समुचित समय है। 'समुद्र की तरंगों के शान्त होने पर ही मैं स्नान करूँगा'ह्वह्वऐसा सोचना मूर्खता है।

आवश्यकताएँ : ओ मानव! जीवन अनिश्चित है, जब कि मृत्यु निश्चित है। यह भी समझ लो कि अनित्य लौकिक सम्बन्ध और नश्वर विषय-सुख असत्य हैं। सत्यता या वास्तविकता केवल मात्र ईश्वर ही है। सत्य और असत्य को विवेक से जानो। सत्यानुसन्धान के लिए उत्कट जिज्ञासा उत्पन्न करो और मिथ्या प्रलोभनों से अपने को मुक्त करो। परीक्षाओं और कष्टों की घड़ी में स्थिर रहना सीखो। अपनी इन्द्रियों और आवेगों को नियन्त्रण में रखो। सभी परिस्थितियों में सन्तुष्ट और प्रसन्न रहो। आत्म-विश्वास एवं ईश्वर में निष्ठा बनाये रखो। सम्यक् ज्ञानानुसार आचरण करो।

कैसे और कहाँ खोजें : ज्ञान और आनन्द केवल संन्यासियों और आरण्यकों की ही सम्पत्ति नहीं है। हृदय भगवान् का स्वर्ण-मन्दिर है। ईश्वर आपके और प्रत्येक प्राणी के हृदय में अवस्थित है। यह जगत् ईश्वर का परिव्यक्त स्वरूप है। अपने हृदय एवं मन को शुद्ध करिए; तभी आप अपने भीतर, बाहर एवं सर्वत्र उसी का दर्शन करेंगे।

मार्ग-दर्शन संकेत : भगवत्साक्षात्कार-प्राप्त सन्तों का स्मरण करो और उनसे प्रेरणा प्राप्त करो। एक निश्चित उद्देश्य सम्मुख रखो; उत्तम विचारों की पृष्ठभूमि में जीवन का निर्धारित समुचित कार्यक्रम बनाओ। श्रद्धा और विश्वास से कार्य करो। आत्म-संयम और युक्त जीवन के अभाव

में सद्गुण प्रस्फुटित नहीं होगा। अतः चरित्र का विकास करो। समस्त ज्ञान और धन-सम्पदा की अपेक्षा चरित्र अधिक मूल्यवान् और शक्तिमान् है। शुद्धता, सत्यता, सच्चरित्रता और दृढ़ धारणा से आप तुरन्त जीवनादर्श की अनुभूति करेंगे।

अनुसन्धान करिए : निज स्वरूप का, छल, भय तथा अहं के मूल कारण का, अवस्था-त्रय (जागृति, स्वप्न तथा सुषुप्ति) का। अनित्यता को पूर्णरूपेण नकारिए; तभी आपमें ज्ञान-सूर्य का उदय होगा और आप माया के बन्धन से मुक्त होंगे। ईश्वर के प्रति अगाध आसक्ति का उपार्जन करने से, उनसे दृढ़, प्रगाढ़ प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करने से तथा पूर्ण आत्म-समर्पण एवं पूर्ण प्रपत्ति से आप दिव्य दृष्टि और ईश्वर-चैतन्यता की प्राप्ति करेंगे। मानवता, माता-पिता, पूज्यजन, गुरुजन, साधुओं, संन्यासियों, महात्माओं, रोगियों और निर्धनों के प्रति की गयी निष्काम सेवा ही ईश्वर की आराधना है। फल की इच्छा से रहित सेवा मन को शुद्ध करती है तथा इसे दिव्य प्रकाश व आनन्द-प्राप्ति के लिए तैयार करती है।

प्रमुख चार मार्ग : भिन्न-भिन्न प्रवृत्त्यनुसार चार प्रशस्त मार्ग निर्देशित हैं। बौद्धिक प्राणियों के लिए ज्ञान-मार्ग, भावना-युक्त प्राणियों के लिए भक्ति-मार्ग, सक्रिय व्यक्तियों के लिए कर्म-मार्ग तथा रहस्यमयी प्रकृति वालों के लिए राजयोग है।

कर्मयोग साधना : बुराई का प्रतिकार भलाई से करो। जो आपका अहित करते हों, उनकी सेवा करो। दूसरे की आवश्यकताओं को अपनी आवश्यकताओं से अधिक महत्त्व दो। जो-कुछ आपके पास है, उसे दूसरों में बाँटो, निर्धनों को दान दो। अशिक्षितों को शिक्षित करो। रोगियों की परिचर्या करो। यथाशक्ति दूसरों के कष्टों का निवारण करो। सेवा के लिए अपनी सुख-सुविधाओं का परित्याग करो। 'मन में राम, हाथ में काम' के माध्यम से अपने दैनिक कार्यों को ईश्वर-पूजा में रूपान्तरित करो। किन्तु नाम व यश की आकांक्षा से सचेत रहो। अहंकार धीरे-धीरे पनपेगा।

सेवाभिमान अति-हानिकारक है। प्रतिदिन आत्म-निरीक्षण एवं आत्म-विश्लेषण द्वारा इसका निवारण करो। अपनी सभी प्रेरणाओं का विश्लेषण करो। सच्ची विनयशीलता का उपार्जन करो।

भक्तियोग : भक्तों और साधुओं की सत्संगति, ब्राह्ममुहूर्त में उठना, भगवान् के मधुर नामों का संकीर्तन करना, जप, प्रार्थना व अपने इष्टदेव का पूजन करना, धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करना, दान देना, सामयिक व्रत करना, रात्रि-जागरण करना आदि भगवत्प्रेम के विकास एवं प्रगति के लिए अपेक्षित साधनाएँ हैं। भगवन्नाम का गायन भक्ति-भाव से करो। समस्त प्राणियों में भगवद्-दर्शन करो। अपने मन, हृदय तथा आत्मा को भगवान् के चरण-कमलों में समर्पित करो। प्रह्लाद की भाँति उत्सुकता से प्रार्थना करो। मीरा, राधा एवं रामकृष्ण परमहंस की भाँति भगवद्-दर्शन हेतु सच्चे हृदय से रुदन करो। भावपूर्ण हृदय से जपोह्नह्न''मैं आपका हूँ, सब आपका है; हे प्रभो! आपकी इच्छा पूर्ण हो!''

ज्ञानयोग : ज्ञानी गुरु की शरण लो। उससे श्रुतियों का श्रवण करो। श्रवण किये गये उपदेशों का पुनः-पुनः मनन करो। वेदान्त के सत्यों पर अनवरत निदिध्यासन करो। स्पष्ट, गम्भीर ज्ञान तथा दृढ़ संकल्प-शक्ति विकसित करो। देहासक्ति तथा 'मैं' और 'मेरे' की भावना मन को अज्ञानबद्ध रखती है। अहंकार सदैव मनमानी करता है। पूर्व-जन्मों की वासनाएँ, संकल्प, भय, मानसिक चंचलता, भ्रमात्मक विचार एवं मोह आत्मिक खोज और ध्यान की बाधाएँ हैं।

राजयोग : इन्द्रिय-दमन तथा चरित्र की शुद्धता के पश्चात् ही राजयोग की कठोर साधना सम्भव है। यह एक गुप्त रहस्यमय विज्ञान है। सत्यवादी बनो। किसी को हानि नहीं पहुँचाओ। संयमी रहो। शुद्धता, सन्तोष, तपश्चर्या, स्वाध्याय तथा आराधना-सम्बन्धी शास्त्रोक्त प्रनियमों का अनुपालन करो। आसनों के अभ्यास द्वारा स्वस्थ एवं पुष्ट शरीर बनाओ तथा प्राणायाम द्वारा अन्दर के कोषों को शुद्ध करो। जब मन शुद्ध हो जाये,

तब उसे इन्द्रिय-जन्य अनुभवों से विमुख करो। इसे ही प्रत्याहार से अभिहित किया जाता है। प्रत्याहार मन की बहिर्मुखता पर प्रभावकारी अंकुश का काम करता है, मन की उत्तेजनाओं को शान्त करता है तथा मन को एकाग्र करता है।

सामान्य पृष्ठभूमि : मानव के सफल प्रयासों की मौलिक पूर्वापेक्षाएँ सर्वत्र समान हैं। वे हैंह्वह्वनैतिकता तथा सामान्य मानसिक और शारीरिक स्वस्थता। नैतिकता के अभाव में प्रगति सम्भव नहीं। सब-कुछ होते हुए भी यदि इस जगत् में व्यक्ति आरोग्यता-सम्पन्न न हो, तो वह न स्वयं के लिए और न जगत् के लिए ही लाभदायक होगा। स्वास्थ्य के अभाव में कोई भी प्रयत्न अथवा प्रयास सम्भव नहीं है। इसी प्रकार संसार का स्वामित्व प्राप्त होने पर तथा असीम शक्ति एवं बुद्धि से सम्पन्न होने पर भी नैतिकता के अभाव में उसका जीवन व्यर्थ है। अन्ततः उसका घोर पतन होगा। अतः स्वास्थ्य और प्राकृतिक नियमों का पालन करो। संयमित तथा नियमित सरल जीवन यापन करो। दैनिक व्यायाम, प्राणायाम, आसन, अल्पाहार और शुद्ध विचारों से शरीर को हलका और शुद्ध रखो। सद्गुणों के व्यावहारिक अभ्यास द्वारा चरित्रवान् बनो। भले कार्य करो और समस्त कुटिलता और कायरता को विनष्ट करो। ईर्ष्या व घृणा का उन्मूलन करो। सत्य पर दृढ़ रहो, समग्र स्त्री-जाति में दिव्यता के दर्शन करो। सफलताओं और उपलब्धियों में जीवन प्रथम नींव संस्थित है। त्वरित प्रगति और आत्म-साक्षात्कार के लिए आप आश्वस्त हो जायेंगे।

महिमा : कितना भी कठिन कार्य क्यों न हो, एक ईमानदार व्यक्ति के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। जो एक व्यक्ति कर चुका है, वह दूसरा भी कर सकता है। इस परमानन्द-स्थिति की महिमा अवर्णनीय है। आपको अखण्ड आनन्द, परम स्वतन्त्रता और नित्य शान्ति की प्राप्ति होगी। आप महाराजाधिराज हो। वह परम स्थिति निर्भय, निर्विकार और अमर है।

आह्वान : ओ अमर पुत्रो! अपूर्णता, अज्ञानता और असन्तोष का जीवन खूब बिता चुके हो। पूर्ण और सब प्रकार से विकसित जीवन व्यतीत करो। एक ज्योतिर्मय आत्मा बनो। इसी क्षण, जहाँ भी तुम हो, पृथ्वी को स्वर्ग बनाओ। अविद्या-रूपी निद्रा से जागो और दिव्य जीवन व्यतीत करने के लिए तत्पर हो जाओ। प्रयत्नशील बनो। आलस्य और कायरता को विनष्ट करो। प्रत्येक कार्य में आपको सफलता प्राप्त होगी। आप भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में भव्य उन्नति करोगे। आप अविलम्ब लक्ष्य की प्राप्ति करोगे। मैं आपको आश्वासन देता हूँ।

पाठको! यही जागृति का उद्घोष है! यही सन्देश है!

यही दिव्य प्रकाश-पुंज श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज का आदेश व उपदेश है ।